वर्तमान संदर्भ में मैथिली और भोजपुरी लोक नाट्य परंपरा की प्रासंगिकता

विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

की पी-एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तावित

शोध-प्रारूप

संकाय-मानविकी

विषय-हिन्दी

शोध निर्देशक

डॉ० संतोष कुमार

अध्यक्ष हिन्दी-विभाग

भारतीय मंडन महाविद्यालय,

रहिका, मधुबनी

अनुसंधाता

कृष्ण मोहन राय

पैट क्रमांक– 22090194

संकटमोचन कॉलोनी

सेवा मिथिला गली

मंगरौनी रोड, मधुबनी

वर्तमान संदर्भ में मैथिली और भोजपुरी लोक नाट्य परंपरा की प्रासंगिकता

भूमिका

किसी राष्ट्र के सांस्कृतिक वैभव का परिचायक वहाँ का लोक और उसमें मौजूद साहित्य होता है। लोक साहित्य में उस राष्ट्र के संस्कार, परंपराएँ, जीवनादर्श, उत्सव-विषाद, नायक-नायिकाएँ, ऋतु गीत, विवाह गीत, भजन, राजनैतिक-सामाजिक गीत, विरह गीत इत्यादि को अपने देशज स्वरुप में मौजूद होते हैं। यूँ तो प्रायः प्रत्येक देश में लोक साहित्य की एक सुदीर्घ परंपरा प्राप्त होती है, परन्तु अधिकांश देशों का लोक साहित्य एकाध भाषाओं अथवा बोलियों तक सीमित रहता है। भारत इस मामले में सौभाग्यशाली है क्योंकि इस देश की कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी की परंपरा ने इसे बोलियों एवं भाषाओं और लोक साहित्य का एक विस्तृत समृद्धि को प्रदान किया है, जिसमें लोक साहित्य के कई रंग-रूप देखे जा सकते हैं। ऐसे में कहना न होगा कि बिहार में बोली जाने वाली मैथिली और भोजपुरी भी इस कोश की अक्षय मंजूषा है।

लोक-साहित्य के संदर्भ में लोगों की मानसिकता 'अशिष्ट, असभ्य और गवार लोगों के साहित्य' के रूप में दिखाई पड़ती है। साहित्य के विकास में लोकसाहित्य ही साहित्य की नींव है। उसके बगैर साहित्य की कल्पना सम्बद्ध नहीं है। लोक जीवन की रोजाना की अनुभूतियाँ हमारे हास-विलास एवं सुख-दुख की भावमय अभिव्यक्ति अपने संगीतात्मक परिवेश में लयात्मक शब्दावली के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। लोक में गाये जाने वाले लोक-गीत, लोक-जन द्वारा विशेष परिस्थिति, स्थल, कर्म और संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति है। जीवन के सभी पहलुओं एवं भिन्न परिस्थितियाँ में मनुष्य के मानसिक तथा शारारिक व्यापार जैसे भी होते हैं, उनका यथार्थ चित्रण इन्हीं में मिलता है। देश का कोई भी भू-भाग रहा हो, कोई भी सांस्कृतिक विरासत रही हो, कोई भी भाषा, धर्म, जाति रहे हों, लोकगीतों ने सभी को परे रखकर अपने माधुर्य से समूचे देश का मन मोहा है। नाट्य जगत में रंगमंच शास्त्रीय रूप से विकसित है, वही लोक-नाट्य उस विकास परम्परा में दबा हुआ हैं। आज भी कई ऐसे जनजातियाँ हैं जो अपनी सभ्यता और संस्कृति को लोक-नाट्य के माध्यम से सजोये हुए है। संस्कृति और सभ्यता के कारण ही विश्वभर में भारत को अलग पहजान मिली है। उसी परम्पराओं को सजोने का काम लोक-नाट्य करते आ रहे हैं।

लोक-नाट्य को एक प्रकार से मनोरंजन का साधन के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसकी विशिष्टता हमें पर्व-त्योहार में देखने को मिलती है। लोक-नाट्य को विशेष त्योहारों और पर्वों के दिन हमारी संस्कृति और रीति,रिवाज परम्पराओं को प्रदर्शित कर जनजागृति का कार्य किया जाता था। विभिन्न जातियों के लोग जैसे

भांड, तरगना, भतरा, मांग, गारुडी, कंजारभाट आदि अपने अभिनय कला से विभिन्न स्थानों पर लोक-नाट्य प्रदर्शित किया करते हैं। आज की युवा पीढ़ी बाजारवाद, भूमण्डलीकरण, मशीनीकरण के कारण अपनी संस्कृति और कलाओं से विमुख होती जा रही है। इसलिए हमें लोकनाट्य पर अध्ययन करने की आवश्यकता है और वर्तमान समय में उसके प्रासंगिकता के पहलु को भी समझना आवश्यक है।

भारत में विविधता केवल समाज के स्तर पर नही है बल्कि भाषा और समुदाय के स्तर पर भी है जहाँ अलग-अलग परम्परा के लोग एक साथ निवास करते हैं। सभी समुदायों की अपनी एक संस्कृति और अपनी एक पहचान होती हैं। प्राचीन समय में व्यक्ति के पास साधन नहीं हुआ करते थे, इसलिए उन्होंने अपने मनोरंजन के लिए लोक, कलाओं का निर्माण किया। व्यक्ति द्वारा निर्मित लोक, कलाओं में उनकी संस्कृति तथा उनके परम्पराओं की झाकियाँ मिलती हैं। भारत में विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न समुदाय होने के कारण उनकी परम्परा भिन्न-भिन्न दिखाई देती हैं। समुदाय के परम्पराओं की झलक हमें लोक–साहित्य में देखने मिलती हैं। लोक परम्पराएँ ही भारत की वह धरोहर है जिसे भारत की आत्मा कहना अनुचित नहीं होगा।

लोक-साहित्य में लोक-नाट्य सबसे सशक्त विधा में से एक है। क्योंकि लोक-नाट्य में लोक-साहित्य के सभी रंग प्रदर्शित होते हैं। जिसमें गायन, नृत्य, कथा, अभिनय, वाद्य आदि से नाट्य की प्रस्तुति की जाती है। इसमें श्रवण और दृश्य दोनों तत्त्व विद्यमान होते हैं। भरत मुनि 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य उत्त्पति के संदर्भ में कहते है,

"जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्, सामभ्यो गीतमेवच।
यजुर्वेदादभिनयान्, रसमाथर्वणादपि।।" (नाट्यशास्त्र 1/17,18')

भरत मुनि नाट्य की उत्त्पति का स्रोत वेदों से मानते है जिसमें ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अर्थववेद से रस द्वारा ही नाट्य की उत्पत्ति हुई है। इसलिए भरत मुनि ने इसे पंचमवेद की उपाधि दी है। नाट्य में रंगसज्जा से लेकर रस, अभिनय से सभी नियमों को नाट्यशास्त्र में दर्शाया है। लेकिन लोक-नाट्य के अभिनय के लिए विशेष प्रकार की कोई रंगसज्जा की अनिवार्यता नहीं होती। यह गावों में जन-पथ, मंदिरों में, चौपालों में आदि विशेष त्योहारों, पूजा में प्रदर्शित किया जाता और प्रदर्शित करने वाले गाँव के ही आम लोगों में से रहते हैं। यह पूरी तरह शास्त्रीय बंधन से मुक्त है। डॉ. अमरनाथ द्वारा रचित पुस्तक 'हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली' में लोकनाट्य की उद्भावना के संदर्भ में मत है, "लोकनाट्य की उत्त्पति लोकविश्वास, धार्मिक रूढ़ियों, परम्पराओं, वीर पूजा, मनोरंजन, उत्सव, मांगलिक पर्व तथा शोध आदि के अवसरों पर सहज अभिव्यक्त उल्लास, शोक आदि मानों भाव के बीच हुई होगी।" अतः वे लोकनाट्य की उत्त्पति सहज परम्पराओं के बीच मानते है, जिसका कोई निर्धारित समय नहीं है। लोक-नाट्य को विषय में नगेन्द्र कहते है, "जीवन की सामूहिक आवश्यकताओं एवं प्रेरणाओं के बीच इसका जन्म हुआ होगा। संस्कृत के अनेक

उपरूपक तथा रूपकों में प्रसहन, हल्लीसक, रासक, लास्य, लास्यनाटक, वीथी आदि लोकनाटकों के ही परिष्कृत रूप है।" अतः लोकनाट्य की उत्पत्ति जीवन के आवश्यकताओं और प्रेरणाओं को मानते है। श्याम परमार अपनी पुस्तक 'लोकधर्मी नाट्य परम्परा' में लोकनाट्य को परिभाषित करते हैं, "लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है, जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से हो और जो परंपरा से अपने-अपने क्षेत्र के जनसमुदाय के मनोरंजन का साधन रहा हो।"

इस प्रकार लोकनाट्य की उत्पत्ति मूल मनोरंजन का साधन मानते है, जिसमें विशिष्ट समुदाय विशेष पर्व और त्योहारों में अपने मनोरंजन के लिए नाट्य का माध्यम चुना। लोकनाट्य को प्रदर्शित करने का मूल आधार लोक-कथा पौराणिक कथाएँ, ऐतिहासिक कथाएँ तथा प्रहसन के माध्यम से सामाजिक परिस्थितियों को केन्द्रित करते हुए अभिनय किया करते थे। भारत में विभिन्न प्रान्तों में पारम्परिक रूप से यह लोक-नाट्य खेले जाते हैं जो इस प्रकार है, जम्मू-कश्मीर-भांड-पाथेर, हिमांचल प्रदेश – करियार, धंज्जा, पंजाब – स्वांग, उत्तराखंड – भड़ा (भडौली), उत्तर प्रदेश – नौटंकी, रामलीला, रासलीला, खोईया, राजस्थान - ख्याल, मध्यप्रदेश – माच, गमंत, निमाणी, छत्तीसगढ़ – नाचा, भतरा, पंडवानी, माओपाटा, उड़ीसा – जतरा, बिहार – बिदेसिया, जाट–जाटीन, सामा, चकेवा, भाकुली,भंका, डोक, कच किर्तनिया, गुजरात – भवाई, महाराष्ट्र – तमाशा, गोंधल, गोवा, दशावतार, कर्नाटक, यक्षगान, केरल – कुट्टीयट्टम, आन्ध्र प्रदेश – भाम कालापन है।

लोकनाट्य की परंपरा में बिहार प्रान्त एक समृद्ध प्रान्त है। लोक संस्कृति यहां की मिट्टी में रची बसी है। विशेष अवसरों तीज, त्योहारों पर महिलाओं द्वारा विशेष रूप से नाट्य खेला जाता है। जो इस प्रकार है, 'बिदेसिया', 'जाट-जाटिन, 'सामा-चकेवा', डोमकछ, झिझिया आदि नाट्य प्रमुख हैं। जाट-जाटिन नाट्य के सम्बन्ध में कहा जाता है, यह जेठ आषाढ़ महीने में खेला जाता है ...।। इसमें महिलाएँ रात्रि को अपने गाँव के किसी ऊँचे स्थान पर एकत्रित होती है। उसमें से एक महिला जट (पुरूष वेश) बनाया जाता है दूसरी जाटिन बनती है। बड़ी बुजुर्ग महिला सूत्रधार होती है। इस नाट्य को गीत गाकर खेला जाता है। संवाद में पद्यात्मक शैली प्रयोग किया जाता है। पति-पत्नी में नोक-झोक, पारिवारिक मुद्दे, पति के विदेश जाने पर पत्नी का वियोग, सामजिक मुद्दे आदि जैसे मुद्दों पर वह नाट्य खेलती है। यह पूरे मिथलांचल में प्रसिद्ध है।

बिहार में विवाह के अवसर पर भी स्वांग रचकर महिलाएँ नाट्य खेलती है, जिसे 'डोमकच कहा जाता है। डोमकच' वस्तुतः एक सामाजिक स्वाँग है, जो पहले ग्रामीण समाज में प्रचलित था और लड़के की बारात जाने के बाद डोम-डोमिनों द्वारा खेला जाता था। इसी कारण इसका नाम डोमकछ पड़ा। अतः इस नाट्य में महिलाए पुरुषों का वेश बदल कर उनके जैसा स्वाँग रचती है। इस नाट्य के माध्यम से स्त्रियाँ अपना मनोरंजन करती है। और पारिवारिक मुद्दों को आधार बनाते हुए नाट्य खेलती है। अतः लोकनाट्य के सम्बन्ध में बिहार

प्रदेश का लोकरंग इन्द्रधनुषीय है। वहाँ के हर नाट्य की अपनी एक अपनी विशेषता हैं। जैसे 'सामा-चकेवा' रक्षा-बंधन के अवसरों पर कुंवारी कन्याओं द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं 'बिदेसिया' भिखारी ठाकुर की रचना पर आधारित लोकनाट्य हैं। जिसमें पति के विदेश चले जाने पर पत्नी अपना नाट्य के माध्यम से विरह वेदना प्रकट करती है। इस प्रकार बिहार की परम्परा इनके लोकनाट्य में विशेष रूप से मिलाती है।

आमतौर पर लोक नाट्य परंपरा को रचनाधर्मिता के फलक पर देखा जाता है। लोक नाट्य की रचनाधर्मिता उसके सांस्कृतिक परिवेश को अपने ज्वलंत प्रश्नों के साथ उभरता है और अकादमिक तौर पर विमर्शों के निर्माण में लोक नाट्य एक प्रभावशाली भूमिका अदा करते है। इस शोध के जरिये यह प्रयास होगा कि लोक नाट्य को उसके अंचल विशेष के साथ वर्तमान युग के सांस्कृतिक-सामाजिक वातावरण के संदर्भ में देखे जाए।

प्रस्तुत शोध की आवश्यकता

समाज को सुसभ्य बनाने में हमारे लोकनाट्य एक अहम् भूमिका अदा करता है। पुराणिक कथाएँ सभी लोग पढ़ने में असमर्थ होते है, इसलिए नाट्य के माध्यम से धार्मिक ग्रंथों को पहुँचाने का कार्य किया जाता है। लोकनाट्य के माध्यम से जनजागृति का कार्य किया जाता है। समाज में घटित हो रहे, असमाजिक तत्त्वों को, लोगों के सामने लाने का कार्य किया जाता है। युवा पीढ़ी को अपनी संस्कृति तथा सभ्यता से जोड़ने के लिए लोकनाट्यों को संस्था और विशेष जाति के लोगों ने कई वर्षों से इसे जीवित रखा हैं। लोकनाट्य एकता स्थापित करने का कार्य भी किया जाता है। आधुनिक युग के भारतीय नाट्य विकास के क्रम को देखते हुए कह सकते हैं कि हमारे लोक नाट्य ही भारतीय नाटक का बीज रूप हैं। प्रौद्योगिकी ने भारतीय संस्कृति को विश्व स्तर पर पहुँचाया हैं; परन्तु आधुनिकीकरण के कारण धीरे-धीरे हमारी परम्पराओं का ढांचा बदलता जा रहा हैं। बाजारीकारण के कारण लोक-परम्पराएँ आर्थिक उत्पार्जन का रूप लेते जा रहीं हैं; जिससे हमारी परम्पराओं का नुकसान होते जा रहा हैं, जिसे जीवित रखना हमारा उत्तरदायित्व है।

किसी भी भाषा का आधुनिक नाटक, प्राचीन नाटकों की समाधि पर उगा हुआ तरुवर है, जो युग सापेक्ष विविध पौष्टिक अवदानों से लगातार पल-बढ़ रहा है। प्राचीन नाट्य-लेखन की एक लम्बी-सी विरासत, लोक-नाट्य में लोकाभिरुचि ओर पारसी रंग-मंच की व्यापारिकता-इन तीनों ने आधुनिक भाव-बोध से युक्त रचनाकारों की विचारधारा को नाट्य-लेखन की नई दिशा दी है, आधुनिक भोजपुरी- मैथिली नाटक इसके अपवाद नहीं है।

लोकनाट्य की विकास परम्परा खोजते हुए इतिहासकारों ने काफी तर्क-वितर्क के बाद यह बात स्वीकार ती है कि मैथिली नाटक की रचना मिथिला में बीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई। यह भी कहते हैं कि नेपाल तथा आसाम में मध्यकाल में भी मैथिली नाटकों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई। यूँ कतिपय वक्ता 'धर्म समागम' और 'गोरक्ष विजय' से मैथिली नाटकों की परम्परा शुरू कर लेते हैं। लक्षणकारों ने संस्कृत नाटक के गाथा-विधान पर जिस तरह का अनुशासन लगाया था उस हिसाब से लिखे गए नाटकों में गौण-पात्र, नारी-पात्र की भाषा अथवा प्रसंगवश आई मैथिली की कुछ पंक्तियों के सहयोग से वे वक्ता ऐसा अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं कि हो न हो वह इस भाषा का नाटक होगा।

दृश्यकाव्य होने के कारण नाटक, जनसामान्य के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी काव्य-विधा है। यह एक ऐसी सामाजिक कला है जिसमें समकालीन युगचेतना अभिव्यक्त होती है। समाज के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर उत्थान-पतन का अवलोकन इस विधा के तहत होता है। एक समय ऐसा आया, जब संस्कृत, नाटकों में इसकी उपेक्षा होने लगी। नाटक से लोकजीवन गायब होने लगा। अधिकांश नाटकों में लोकजीवन की समग्रता के चित्रण की उपेक्षा और वर्गविशेष के प्रति आग्रह दिखने लगा। अर्थात् समय-समय पर भारतीय संस्कृति में विभिन्न भूभाग ओर मनोवृत्ति के शासकों के आक्रमण से जैसा उथल-पुथल, जैसा परिवर्तन हुआ, वैसा यहाँ की नाट्य-संस्कृति में नहीं हुआ। नाटक चूंकि समाज की विकृतियों और विद्रूपताओं की अनुकृति है सांस्कृतिक हास का प्रतिबिम्ब है। जनसामान्य इस दर्पण में अपने जीवन का प्रतिबिम्ब देखना चाहता है, अतः इसकी रचना-प्रक्रिया में भी उसके अनुरूप परिवर्तन होते रहना चाहिए, जो नहीं हुआ। ऐसा, केवल एक बार ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय नाट्य परम्पराओं में एकाधिक बार हुआ है। लोकजीवन से यह सम्बन्ध विच्छेद नाला-संस्कृति के पतन का द्योतक है। पतन की भी एक सीमा होती है। भारतीय नाटकों के पतन की भी अपनी सीमा थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्ययुग का सीमा-निर्धारण स्पष्ट नहीं है। अतएव, हम जब भी मध्ययुगीन नाटकों के पतन पर विचार करते हैं। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक पहुँच जाते हैं, क्योंकि हम ऐसा समझते हैं, कि भारतेन्दु के पूर्व नाटकों की परम्परा छिन्न-भिन्त्र थी। जिसमें काव्यत्व अधिक और नाटकत्व है ही नहीं (डॉ। वासुदेव नन्दन प्रसाद/भारतेन्दु युग का नाट्य साहित्य और रंगमंच)। यह बात अपनी सीमा तक सच और गलत हो सकती है। लेकिन यह निर्विवाद सत्य है कि लोकनाट्य तथा साहित्यिक नाटकों का आदान-प्रदान सदा से होता रहा है। हमारी नाटय संस्कृति, सामाजिक जीवन-प्रक्रिया के उत्थान-पत्तन की दौड़ की तरह ही शीर्ष ओर गर्त पर जाती रही है। इस उत्थान-पतन के संक्रमण और संकटकालीन अन्तराल में इस संस्कृति को मृत होने से बचाने का काम सदा से लोक नाट्य करता रहा है। समकालीन सामाजिक और धार्मिक स्थितियों के चित्रण से युक्त लोक

नाट्य संस्कृति हमें न केवल तकालीन रहन-सहन और लोकजीवन से परिचय कराती है बल्कि एक लम्बी-खासी विरासत का मानचित्र दिखाती हुई नाट्य कर्म में नए-नए प्रयोगों की प्रेरणा भी देती है।

प्रस्तावित शोध प्रारूप महत्व

हिंदी साहित्य के मूल-केंद्र में लोक विद्यमान रहा है। आज पूंजीवादी विकास के चहुंओर शोर के क्रम में लोक संस्कार, साहित्य और उसके बोध ख़त्म होते जा रहें हैं, जीवन की मुख्यधारा में लोक को लेकर को लेकर कोई खास चिंता नजर नही आ रही है। साहित्य और समाज के विमर्श से उसके सरोकार का गायब हों रहें है जो चिंता का विषय है। संस्कृति और सिनेमा से भी लोक अपने संकर रूप में ही सामने आ रहा हैं। लोक अपने ग्रामीण परिवेश के साथ जो मानव श्रम की संस्कृति गायब होती जा रही है वह मानव समाज के लिए बहुत ही घातक है। समकालीन कथा साहित्य में जो भी लोकजीवन आया है उसका मूल्यांकन और विश्लेषण, साहित्य संस्कृति के लिए भी बहुत जरुरी है । बिहार के सांस्कृतिक तथा लोक जीवन में लोकनाट्यों का एक अपना ही एक अलग महत्त्व है। ये लोकनाट्य मांगलिक अवसरों, विशेष पर्वो तथा कभी-कभी मात्र मनोरंजन की दृष्टि से ही आयोजित व प्रायोजित किए जाते हैं। इन लोकनाट्यों में कथानक, संवाद, अभिनय, गीत, नृत्य तथा विशेष दृश्य आदि सभी कुछ होता है। यदि कुछ नहीं होता है तो वह है, सुसज्जित रंगमंच तथा पात्रों का मेकअप एवं वेशभूषा।

मैथिली पूर्वी भारत के उत्तर बिहार राज्य के मिथिला क्षेत्र में बोली जाती है। मैथिली भारत की सबसे पुरानी नाट्य परंपराओं में से एक होने का दावा करती है, जो चौदहवीं शताब्दी में कीर्तनिया के विकास से जुड़ी है। इसलिए यह शास्त्रीय संस्कृत और क्षेत्रीय रूपों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी बनाता है। मध्यकाल में, मैथिली रंगमंच असम और नेपाल तक फैल गया, जिससे मैथिली नाटक का एक विशाल संग्रह तैयार हुआ। सिद्धि नरसिंघदेव और भूपतिंद्र मल्ल नेपाल के प्रसिद्ध नाटककारों में से थे। उन्नीसवीं सदी के अंत में पारसी रंगमंच और रामलीला मिथिला तक पहुँचे, जिससे कीर्तनिया का समय से पहले अंत्येष्टि हो गई।

मिथिला में लोकनाट्यों की परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। सम्पूर्ण भारत के लोकनाट्यों को प्रभावित करने वाले तीन मुख्य कारण की उत्पत्ति यही हुई है। 11वीं शताब्दी में ज्योतिरीश्वर ठाकुर द्वारा रचित वर्णरत्नाकर, जयदेव का'गीतगोविंद' तथा उमापति द्वारा रचित 'पारिजातहरण नाटक' इन तीन ग्रंथो का प्रभाव उत्तर से दक्षिण, पूर्वी भारत के लगभग सभी लोकनाट्यों पर पड़ा। ज्योतिरीश्वर ठाकुर के द्वारा रचित 'वर्णरत्नाकर' की बात करें तो यह महाकाव्य विश्वकोषीय ग्रंथ है। यह ग्रंथ तत्कालीन समाज और कला का विश्वकोश है। वर्णरत्नाकर गद्य काव्य है, जो प्राचीन मैथिली में विरचित है। विद्वानों ने इसे आधुनिक आर्य भाषा

का प्राचीनतम ग्रंथ कहा है, बिदापत तथा नटुआ नाच जैसे नाट्य रूपों की चर्चा हमें वर्णरत्नाकर से ही मिलती है, वर्णरत्नाकर में वाद्यों कलाजीवियों, चौसंठ कलारूपों, नायक -नायिका के प्रकार का उल्लेख हुआ है।

इससे जीवन झा द्वारा भरी गई मैथिली नाट्य गतिविधि में एक शून्य पैदा हो गया। उन्होंने कीर्तनिया, पारसी, रामलीला, संस्कृत रंगमंच और बंगाल में नाट्य पुनर्जागरण का संश्लेषण करके एक नई शैली विकसित की। लेकिन उन्होंने बोलचाल की भाषा मैथिली को भाषा के रूप में नियोजित किया। उन्होंने पहला आधुनिक मैथिली नाटक, 1904 में सुंदरसंयोग और 1906 में नर्मदा-सागर लिखा। ये सामाजिक समस्याओं पर आधारित थे और इनका प्रीमियर वाराणसी में हुआ था। हालाँकि, मुंसी रघुनंदन दास ने मिथिला में आधुनिक मैथिली थिएटर की स्थापना की। 1910 में उनके मैथिली नाटक यानी 'मैथिली नाटक' और 1932 में दुतंगद-व्यायोग यानी 'दुतंगद का व्यायोगद' का मंचन व्यावसायिक थिएटरों द्वारा किया गया। मंडलियाँ थीं उमाकांत की मिथिला नाटक कंपनी और अन्य मंडलियाँ। बीसवीं सदी के मध्य में ईशनाथ झा का बोलबाला था। 1939 में उनकी चीनी-के-लड्डू यानी 'बॉल ऑफ शुगर' और 1957 में 'उगना' ने दर्शकों को लंबे समय तक मंत्रमुग्ध किया।

उन दिनों कोई स्थायी खेल-कूद का मैदान नहीं होता था। मंच बांस और लकड़ी के प्लेटफार्मों से बनाए गए थे, जिनमें पर्दे, प्रकाश के लिए अरंडी के तेल के लैंप और परावर्तक के रूप में एक बड़ी चमकदार पीतल की डिस्क थी। शाही पोशाक लेकिन साधारण मेकअप और फिलर्स के रूप में मैथिली गीतों का उपयोग प्रारंभिक आधुनिक चरण की असामान्य विशेषताएं थीं। माइक्रोफ़ोन तक पहुंच न होने के कारण, अभिनेताओं ने अपने संवाद तेज़ आवाज़ में सुनाए और अत्यधिक इशारों और विशेष ध्वनि प्रभावों का सहारा लिया। हरिजी और रामजतन मिश्र सबसे लोकप्रिय नायक थे।

आजादी के बाद, मैथिली थिएटर कलकत्ता, पटना और दिल्ली जैसे शहरों में फैल गया, जहां प्रवासी मैथिली आबादी एकत्र हुई थी। कलकत्ता में, प्रबोधनारायण सिंह, नचिकेता, गुणनाथ झा और श्रीकांत, दयानाथ और त्रिलोचन झा जैसे निर्देशकों के नेतृत्व में मिथिला कला केंद्र और मिथियात्रिक ने मैथिली थिएटर में नई ऊंचाइयां हासिल कीं। 1950 के दशक से पटना मक्का के रूप में उभरा, जहां 1953 में चेतना समिति, 1982 में अरिपन और 1987 में भंगिमा जैसे समूहों ने अंतर्राष्ट्रीय मैथिली नाटक समारोहों का भी आयोजन किया। 1953 में नाटककार हरि मोहन झा की पत्नी सुभद्रा झा ने महिलाओं के खिलाफ सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ते हुए पहली बार मंच पर अभिनय किया। इसने कमला चौधरी, ललिता झा, प्रेमलता और अन्य प्रगतिशील महिलाओं को थिएटर में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। कलकत्ता और पटना दोनों में, सुधांशु शेखर चौधरी, महेंद्र मलंगिया और अरविंद अक्कू द्वारा स्टेजक्राफ्ट में प्रयोग किए गए।

मैथिली रंगमंच में अभी भी ग्रामीण और शहरी विभाजन हैं। ग्रामीण दर्शक पुरातन सामाजिक-ऐतिहासिक या धार्मिक नाटक के साथ-साथ तेज़-तर्रार और भव्य तमाशा पसंद करते हैं। आवश्यकता के अनुसार कलाकार दर्शकों के भीतर से प्रवेश कर सकते हैं और संगीतकार मंच के दाहिनी ओर बैठ सकते हैं। शहरी रंगमंच सभागारों पर निर्भर करता है, इसके साक्षर दर्शक मनोवैज्ञानिक नाटकों को प्राथमिकता देते हैं। जामघाट, नवतरंग, तर्जनी और संकल्प-लोक जैसे कुछ समूहों ने आधुनिक और स्वदेशी रूपों को मिलाकर एक नई शैली बनाई। गोविंद झा, सोमदेव और रामदेव झा ने अपनी लिपियों में इस संश्लेषण को सुदृढ़ किया। बिहार के दरभंगा के गीत एवं नाटक प्रभाग ने 'विद्यापति गाथागीत' नामक एक शैली का आविष्कार किया। कीर्तनिया को पुनर्जीवित करने का प्रयास भी विभिन्न संभव तरीकों से किया गया है।

भोजपुरी भाषा में लोक-नाटकों का प्रचलन काफी प्राचीन है। बहुत पहले से हमारे समाज में शादी-विवाह के अवसर पर, धार्मिक उत्सवों पर, सामाजिक उत्सवों आदि के अवसर पर सम्पूर्ण भारत में लोक-नटकों का प्रदर्शन किया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र में भोजपुरी के नाटकों का प्रचलन बहुत अधिक है। यद्यपि अधिकाश लोक नाटक अप्रकाशित हैं तथापि भिखारी ठाकुर, राहुल सांकृत्यायन, पं० रविदत्त शुक्ल और गोरखनाथ चौबे के कुछ नाटक प्रकाशित हुए हैं। इस नाटकों के आधार पर भोजपुरी लोक नाट्य परंपरा का समीक्षात्मक अध्ययन करना बहुत आवश्यक लगता है, फलस्वरूप मैंने ‘भोजपुरी और मैथिली लोक-नाट्य की परंपरा’ शीर्षक पर शोध कार्य करने की योजना बनायी।

इसके माध्यम से 'भारतीय नाट्य-परम्परा और लोक-नाट्य' के अन्तर्गत वेदकालीन, रामायण और महाभारत कालीन, संस्कृत, पालि, प्राकृत और उपभ्रंश साहित्य में पाये जाने वाले लोकधर्मी नाटकों के बीज खोजने का प्रयास करना बेहद महत्वपूर्ण है और आधुनिक लोक नाटकों का परिचय देने का प्रयास किया है। भारतीय लोकभाषा में लोक्ताया के बीज मौजूद है जहाँ आधुनिक तत्व मौजूद है। लोकनाटक की परिभाषा के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, उपदेशपरक एवं हास्य-व्यंग्य प्रधान नाटकों की श्रेणियाँ निर्धारित करते हुए समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है एवं जितुर्थ अध्याय में लोक नाटक के तत्वों कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, अभियेनता, रूप-योजना, संगीत योजना, भाषा-संवाद एवं उद्देश्य की सोदाहरण समीक्षा करना अत्यंत जरुरी है।

भोजपुरी के प्रमुख लोक नाटकों और नाटककारों की समृद्ध परंपरा में रविदत्त शुक्ल, भिखारी ठाकुर, पंडित राहुल सांकृत्यायन, गोरखनाथ चौबे के नाटक है। रेडियो लोक नाटककार रामेश्वर सिंह कश्यप अत्यन्त प्रसिद्ध रेडियो नाटककार थे। इस अध्याय में मैंने भिखारी ठाकुर और राहुल साकृत्यायन के लोक नाटकों का समुचित ढंग से अनुशीलन करने का प्रयास नै दृष्टि से बेहद जरुरी है। क्योंकि इन लोक नाटकों का अध्ययन करने

के फलस्वरूप प्राथमिक दृष्टि से यह प्रपात होता है कि तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं शोषण की प्रवृत्ति को विशेषरूप से इन नाटकों का कथ्य बनाया गया है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक विकृतियों के कारण समाज की अधिसंख्य जनता पीड़ित थी। अपने नाटकों के माध्यम से इन नाटककारों ने समाज को एक नयी दिशा प्रदान करने की चेष्टा की है।

पूर्व कृत शोध कार्य

आधार ग्रन्थ

भोजपुरी नाट्य

- रविदत्त शुक्ल -देवाक्षर चरित, प्रकाशन वर्ष 1884

भिखारी ठाकुर;

- बिदेसिया, बेटी, बियोग, विधवा-विलाप, कलयुग बहार, पुत्रवध, श्री गंगा स्नान, भाई विरोध, ननद भौजाई, बुढसाला का बयान, गबर घिचोर, बिरहा बहार नकल भाँड आ नेटुआ के
- भिखारी ठाकुर रचनावली, पुनर्मुद्रित संस्करण 2011 बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, सैदपुर पटना

राहुल सांकृत्यायनः

- नइकी दुनिया, दुनमुन नेता, मेहरारून के दुरदसा, जोक, ई हमार लड़ाई, देश रच्छक जपनिया राक्षस, जरमनवा क हार निहचय।
- राहुल संकृत्यायन भोजपुरी रचनावली, पटना, तीसरा संस्करण 1993
- गोरखनाथ चौबे -उल्टा जमाना, 1942
- रामेश्वर सिंह कश्यप -लोहा सिंह, प्रकाशन वर्ष 1954

अन्य नाटककार

मैथिली नाट्य

- सामवती-पुनर्जन्म, पं० श्री जीवन झा, प्रकाशन वर्ष 1908, काशीराज सभा पंडित झोपाख्य हरिकांत
- सावित्री-सत्यवान, प० श्री लालदास, प्रकाशन वर्ष 1909, मिथिला मिहिर, मैथिली अकादमी
- सीता स्वयंवर, प० श्री आनन्द झा, प्रकाशन वर्ष 1938, बनारस

- जीमूतवाहन-चरित, पं० श्री त्रिलोकनाथ मिश्र, प्रकाशन वर्ष 1940
- गान्धर्व-विवाह, पं० श्री दामोदर झा, प्रकाशन वर्ष 1943, प्रथम प्रकशन 2010, बनारस
- सुन्दर-संयोग, पं० श्री जीवन झा, प्रकाशन वर्ष 1995, तृतीय संस्करण, कशी राज के सभापति लक्ष्मण राज द्वारा
- नर्मदा-सट्टक, श्री ईशनाथ झा, प्रकाशन वर्ष1906, प्रथम संस्करण, 1980, मैथिली अकादमी
- चीनीक लड्डू, पं० श्री गोबिन्द झा, प्रकाशन वर्ष, मैथिली साहित्य पत्रक
- एक छल राजा, श्री उदय नारायण 'नचिकेता', प्रकाशन वर्ष 1973, मैथिली रंगमंच द्वारा प्रकाशन, कलकत्ता
- भफाईत चाहक जिनगी, श्री सुधांशु शेखर चौधरी, प्रकाशन वर्ष 1975, चेतना समिति, पटना
- लेटाईत आँचर, श्री सुधांशु शेखर चौधरी, प्रकाशन वर्ष 1975, चेतना समिति, पटना
- ओरिजनल काम, श्री महेन्द्र मलंगिया, प्रकाशन वर्ष 2008, गंगा प्रकाशन, जनकपुर धाम
- छुतहा धैल, श्री महेन्द्र मलंगिया, प्रकाशन वर्ष 2000, गंगा प्रकाशन, जनकपुर धाम

  एवं अन्य महत्पूर्ण नाटक

साहित्य और समाज के अध्ययन के लिए ‘लोक’ हमेशा से एक महत्वपूर्ण विषय रहा हैं। हालाँकि भोजपुरी और मैथिल भाषा-बोली में लोक नाट्य परंपरा जैसे विषय पर अलग-अलग शोध कार्य तो हुयें है लेकिन भोजपुरी और मैथिल भाषा के लोकनाट्य परंपरा को लेकर तुलनात्मक शोध कार्य देखने को नहीं मिला हैं। शोध के संदर्भ में खोजबीन के दौरान मुझे कुछ शोध ग्रन्थ मिले हैं जिनका उल्लेख मै नीच कर दे रहा हूँ।

- भोजपुरी में लोकनाट्य धर्मी परंपरा (इतिहास और परंपरा) १९७९ - आद्या प्रसाद द्विवेदी
- भोजपुरी के लोक नाटकों का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन – रिंकल उपाध्याय
- मैथिली नाटक का उद्भव और विकास, १९६६ – प्रताप नारायण झा
- लोक नाट्य परंपरा सामाजिक साहित्यिक पृष्ठभूमि – माधुरी त्रिवेदी

शोध की प्राविधि

परिकल्पना के जरिये ही शोध के लिए चुने गए विषय के सन्दर्भ में एक प्रकार की व्याख्या प्राप्त होती है। यह सिधांत एवं अनुसन्धान के बीच की एक आवशयक कड़ी है, जो अतिरिक्त ज्ञान की खोज में सहायक होती है। शोध कार्य में परिकल्पना का प्रयोग एक तथ्य से दुसरे तथ्य के संभावित संबंधों का वर्णन करने के लिए करते है। साहित्य में मनुष्य-जीवन के प्रत्येक अनुभुतियों का चित्रण होता है। समाज से लेकर संस्कृति तक का विस्तार इन अनुभूतियों में समाविष्ट होता है। साहित्य में मानवजीवन की प्रत्येक अनुभूतियों का चित्रण होता है। समाज से लेकर संस्कृति तक का विस्तार इन अनुभूतियों में मौजूद होता है। लोक नाट्य साहित्य इन मानवजीवन की अनुभूतियों के सृजनात्मक तथा सांस्कृतिक विस्तार का प्रतिफल है।

'वर्तमान संदर्भ में मैथिली और भोजपुरी लोक नाट्य परंपरा की प्रासंगिकता" को समझने के लिए इसमें साहित्यिक आलोचनात्मक पद्धति को भी केंद्र में रखा जाएगा साथ ही तुलनात्मक पद्धति से भी पड़ताल की जाएगी जो इस शोध अध्ययन हेतु सहायक होगी। लोकनाट्य में मौजूद सामाजिक परिवेश को समझने और विश्लेषित करने के लिए अन्य अनुशासनों की सहायता लेने के कारण शोध प्रविधि अंतर-अनुशासनात्मक भी होगी। यह शोध प्रस्ताव लोकनाट्य और उसकी प्रासंगिकता को लेकर है। इसलिए भारतीय समाज के साहित्य इतिहास में, ग्रामीण चेतना में लोकनाट्य स्थिति से लेकर वर्तमान समय तक की पूरी मनोदशा को समझने के लिए ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक पद्धति का भी प्रयोग किया जाएगा।

लोक नाट्य परंपरा किसी भी समाज का जीवंत आइना होता हैं। जहाँ उस समाज का अतीत और वर्तमान दोनों एक साथ गुंथे हुए होते हैं। नाट्य परंपरा लोक अपने देशज स्वरुप में मौजूद होता है जहाँ समाज और गाँव का उसके स्वाभाविक रूप में दर्शन होता हैं। इस शोध अध्ययन के माध्यम से मैथिली और भोजपुरी दोनों भाषा, बोली में मौजूद उसके ग्रामीण परिवेश के साथ साथ समाज और उसके अभिन्न तत्वों की पड़ताल इस शोध में की जाएगी। प्रस्तावित शोध का विषय-"वर्तमान संदर्भ में मैथिली और भोजपुरी लोक नाट्य परंपरा की प्रासंगिकता" है।

शोध की परिकल्पना

शोध हेतु प्रस्तुत विषय चयन के मूल में भोजपुरी, मैथिली लोक साहित्य और लोकधर्मी लोकनाट्यों के अवदानों के पीछे मेरी बद्धमूल धारणा को निहित माना जा सकता है। ग्रामीण अंचल से जुड़े होने के कारण भोजपुरी, मैथिली और उसकी लोक संस्कृति से सहज अनुरक्ति होना एक स्वाभाविक बात है। ग्रामीण परिवेश में इतने अधिक सामाजिक सास्कृतिक सन्दर्भ मौजूद हैं जिनको लेकर यहाँ के कथाकर्मी, रगकर्मी और काव्य कर्मी अपने अप्रतीम प्रतिभा कौशल का परिचय देते रहे हैं। इन सबसे प्रभावित होकर मैने भी साहित्य के इस भू-क्षेत्र को अपने शोध अध्ययन का विषय चुना। लोकसाहित्य पर कम अध्ययन चिन्तन नहीं हुये हैं, परन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि लोकनाटकों को लेकर असीम कला-कौशल को छिपाए बैठी है जिसका एक स्वतन्त्र अध्ययन की आवश्यकता का अनुभाव करती है। इसी सच को लोक जनमानस के समक्ष प्रस्तुत करने के लिये मैंने भोजपुरी-मैथिली लोकनाटकों और उसके सामाजिक, सांस्कृतिक प्रासंगिकता को शब्दों में आकार देने की योजना बनाई है।

शोध अध्यायों का विभाजन

प्रथम अध्याय : हिंदी साहित्य में लोक नाट्य परंपरा की उपस्थिति

द्वितीय अध्याय : भोजपुरी में लोक नाट्य परंपरा का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन

तृतीय अध्याय : मैथिली में लोक नाट्य परंपरा का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन

चतुर्थ अध्याय : भोजपुरी और मैथिली लोक नाट्य परंपरा का वर्तमान युग में प्रासंगिकता

पांचवां अध्याय : लोक मंच की दृष्टि से दोनों नाट्य परंपरा का अध्ययन

छठवां अध्याय : भोजपुरी और मैथिली लोक नाट्य परंपरा का भाषाई विश्लेषण और उसका प्रभाव

उपसंहार

परिशिष्ट

प्रस्तावित ग्रन्थों की सूची :

- हेमंत कुकरेत(सं), भारत की लोकसंस्कृति, प्रभात प्रकाशन
- धीरेन्द्र वर्मा(सं), हिंदी साहित्य कोश, भाग 1, ज्ञानमंडल प्रकाशन, 1958
- बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, हिंदी नाट्यशास्त्र सचित्र श्लोक 1/17,18, चौखम्भा संस्कृत संसथान, वाराणसी
- अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, 2009
- लखन लाल खरे, लोकनाट्य परम्परा में नौटंकी, आराधना प्रकाशन, 2021
- श्याम परमार, लोकधर्मी नाट्य परम्परा, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, 1959
- कपिला वात्स्यायन, अनुवाद, बद्दिउज्जामा, पारंपरिक भारतीय रंगमंच अनंत धराये, 2017, एन बी टी, दिल्ली
- सम्पादक. महादेवशास्त्री जोशी, भारतीय संस्कृति कोश, खंड 4, भारतीय संस्कृति कोष मंडल, 1962, पुणे
- जगदीशचंद्र माथुर, परंपरागत नाट्य, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 2006
- मृदुला सिन्हा, बिहार इन्द्रधनुषीय लोक रंग, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2017
- मैथिली नाटक का उदभव और विकास डॉ० लेखनाथ मिश्र, 1989
- मैथिली नाटक परिचय डॉ० प्रेम शंकर मिश्र
- मैथिली नाटक का विकास सम्पादक देवकान्त झा, दिनेश कुमार झा, 2015
- मैथिली साहित्य का इतिहास, जयकान्त मिश्र, 1998, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
- क्रिटिकल हिस्ट्री आफ मैथिली लिट्रेचर डॉ० डी० एन० झा, 2004, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
- आधुनिक मैथिली रंगमंच अतीत, वर्तमान ओ भविष्य सम्पादक श्री चन्द्र नाथमिश्र "अमर", 2008, साहित्य अकादमी, दिल्ली
- आधुनिक मैथिली नाटकक पहिल शताब्दी चेतना समिति से प्रकाशित

पत्र पत्रिकाएँ

- बनारसीदास चतुर्वेदी जनपद (वर्ष-1, अंक-1)

- साहित्य-सन्देश (वर्ष 16, अंक-10) [235]
- सम्मेलन पत्रिका (लोकसस्कृति विशेषाक) 2010 वि०
- डॉ० उदयनारायण तिवारी, डॉ० महेन्द्र भानावत हिन्दुस्तानी (अप्रैल, 1939) लोकराग, भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर, राजस्थान।
- डॉ० विश्वनाथतिवारी दस्तावेज (जन० मार्च 1994-95) राज कमल प्रकाशन समूह।
- राष्ट्रीय सहारा दिनाक 05।03।2013 त्रिपथगा (अक 6 मार्च, 1956

शोध निर्देशक

डॉ० संतोष कुमार

अध्यक्ष हिन्दी-विभाग

भारतीय मंडन महाविद्यालय,

रहिका, मधुबनी

अनुसंधाता

कृष्ण मोहन राय

पैट क्रमांक– 22090194

संकटमोचन कॉलोनी

सेवा मिथिला गली

मंगरौनी रोड, मधुबनी

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

वर्तमान संदर्भ में मैथिली और भोजपुरी लोक नाट्य परंपरा की प्रासंगिकता

शोध-विषय पर संक्षिप्त विवरण

शोध हेतु प्रस्तुत विषय "वर्तमान संदर्भ में मैथिली और भोजपुरी लोक नाट्य परंपरा की प्रासंगिकता" के चयन के पीछे मेरी अपनी ग्रामीण परिवेश की समझ रही है। इस विषय के चयन के माध्यम से कोशिश है कि मैं ग्रामीण चेतना में मौजूद दोनों भाषा के सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश को लोकनाट्य की परंपरा में पड़ताल करने का प्रयास करूंगा। इस परंपरा में दोनों भाषा, बोली के लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवेश भी विद्यमान है जिसको इस अध्ययन में वर्तमान संदर्भों से देखा समझा जायेगा।

समाज में लोकनाट्यों के अवदानों को भी समझने का प्रयास करना इस शोध का प्रमुख उद्देश्य है। लोकनाट्य के परिवेश में इतने अधिक सामाजिक सास्कृतिक सन्दर्भ मौजूद हैं जिनको लेकर यहाँ के कथाकर्मी, रंगकर्मी और काव्यकर्मी अपने अप्रतीम प्रतिभा कौशल का परिचय देते रहे हैं। इन सबसे प्रभावित होकर मैंने भी साहित्य के इस विषय को अपने शोध अध्ययन का विषय चुना।

शोध निर्देशक	अनुसंधाता
डॉ० संतोष कुमार	**कृष्ण मोहन राय**
अध्यक्ष हिन्दी-विभाग	पैट क्रमांक– 22090194
भारतीय मंडन महाविद्यालय,	संकटमोचन कॉलोनी
रहिका, मधुबनी	सेवा मिथिला गली
	मंगरौनी रोड, मधुबनी

डॉ० संतोष कुमार
सहायक प्राचार्य, सह अध्यक्षक
हिन्दी-विभाग,
भारती मंडन महाविद्यालय,
रहिका, मधुबनी, बिहार– 847238

आवास
"वैद्यनाथ धाम", सिमरा,
दरभंगा, बिहार– 846005
संपर्क–9905639492/9472198045
santoshkumar0321@gmail.com

पत्रांक : ....   दिनांक : ....

सहमति–पत्र

श्री कृष्ण मोहन राय, शोधार्थी, पता संकट मोचन कॉलोनी, सेवा मिथिला गली, मंगरौनी रोड मधुबनी, **"वर्तमान संदर्भ में मैथिली और भोजपुरी लोक नाट्य परंपरा की प्रासंगिकता"** विषय पर मेरे निर्देशन में शोध कार्य करना चाहते हैं। इनकी अध्ययनशीलता, लगन एवं कर्मठता देखते हुए इस विषय का पर्यवेक्षण मुझे स्वीकार है। मेरे जानकारी में इस विषय पर स्वतंत्र रूप से शोध-कार्य अभी क संपन्न नहीं हुआ हैं। चरित्र तथा व्यवहार की दृष्टि से श्री कृष्ण मोहन राय शोधपाधि के योग्य हैं।

मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

(डॉ० संतोष कुमार)

शोध निर्देशिका